आदिवासी स्कूली शिक्षा में स्वत्व और पहचान का पुनर्निर्माण

अमन मदान

कक्षा के दैनिक जीवन-अनुभवों के समाजशास्त्रीय अध्ययन ने हमारी इस समझ को समृद्ध किया है कि विद्यार्थी कैसे सीखते हैं, या नहीं सीखते। बच्चे यांत्रिक जीव नहीं हैं। वे शिक्षकों और स्कूली विषयों से सम्बद्ध अपनी भावनाओं और विचारों को सामाजिक अन्त:क्रियाओं के सिलसिलों के माध्यम से निर्मित करते हैं। यह तो समाज में होने वाले अनुभव ही हैं जो एक बच्चे को यह महसूस करने की ओर ले जा सकते हैं कि भूगोल बोरियत पैदा करने वाला, जबकि इतिहास एक रोचक विषय है। जिस बच्ची के घर में वही भाषा बोली जाती है जो स्कूल में प्रयोग होती है और घर में इतिहास से सम्बद्ध वैचारिक चर्चा और बहस भी होती है, स्कूल में भी इतिहास उस बच्ची का ध्यान आकर्षित करेगा। वह शिक्षक और कक्षा के सामने अपनी बात रख सकेगी और शायद ऐसी बातें भी करेगी जिनके बारे में अन्य लोगों को जानकारी न हो, और इस प्रकार वह बाक़ी कक्षा का आदर भी जीत पाएगी। उसका आत्म-सम्मान बढ़ेगा। लेकिन जिस बच्चे के परिवार में कक्षा में इस्तेमाल होने वाली भाषा का प्रयोग नहीं होता, उसकी हालत ठोकर खाते, अन्धेरे में हाथ-पैर मारने वाले व्यक्ति जैसी होगी। मिसाल के तौर पर, उसने अगर *आर्यभट्ट* के बारे में पहले नहीं सुना होगा तो शायद उसे चुप्पी साधनी पड़ेगी और मुमकिन है कि वह बाक़ी कक्षा की उत्साह भरी बातों के बीच बेइज़्ज़त भी महसूस करे।

इस तरह की अन्तःक्रियाओं में निर्मित होने वाले अर्थ और भावनाएँ धीरे-धीरे एकत्र होते रहते हैं और इन्हीं से स्कूल तथा उसमें प्राप्त होने वाले अलग-अलग तरह के ज्ञान के बारे में विद्यार्थी का रवैया आकार लेता है। शिक्षकों और शिक्षाकर्मियों के लिए चुनौती यह है कि कक्षा में होने वाली अन्त:क्रियाओं तथा अर्थों को इस तरह रूप-आकार दिया जाए कि एक बच्चे के ज्ञानार्जन को प्रोत्साहित और समृद्ध किया जा सके। इसी के साथ उन्हें इस बारे में भी सावधान रहना होगा कि ऐसे अर्थों और अन्त:क्रियाओं का निर्माण न हो जिनसे बच्चा अन्तर्मुखी हो कर अपने ही खोल में चला जाए और उसका सीखना बन्द हो जाए।

विद्यार्थियों के दिन-प्रतिदिन के जीवन और कक्षा को समझने के लिए समाजशास्त्र तथा मानव-विज्ञान *(एंथ्रोपॉलजी)* में कई सैद्धान्तिक दृष्टिकोण विकसित किए गए हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण दुनिया को देखने का एक तरीक़ा होता है जिसमें विशिष्ट, अवधारणाएँ और क्या हो रहा है या क्या नहीं हो रहा है इसकी कल्पना के अनेक तरीक़े शामिल रहते हैं। सैद्धान्तिक नज़रियों की मदद से हम भी वह सब देखना शुरू कर सकते हैं जिसकी तरफ़ पहले हमारा ध्यान नहीं गया था। इस लेख में एक प्रमुख सैद्धान्तिक नज़रिए की रूपरेखा दी गई है। साथ ही नीलगिरि पहाड़ियों के आदिवासी बच्चों के साथ 'आदिवासी मुनेत्र संगम' के काम की चर्चा यह दर्शाने के लिए की गई है कि यह काम, शिक्षा की चुनौतियों को समझने में हमारे लिए किस तरह मददगार है।

आदिवासी मुनेत्र संगम

पृष्ठभूमि और इतिहास

'आदिवासी मुनेत्र संगम' नीलगिरि के जंगलों और उसके आस-पास के आदिवासियों के साथ कई दशकों से काम कर रहा है। यहाँ पर पाँच जनजातियाँ हैं पनिया, बिट्टकुरुम्बा, मुल्लुकुरुम्बा, कट्टुनायका, इरुड़ा। पहले उनका जीवनयापन शिकार करके, जंगली फलों को एकत्र करके तथा खेत और बागानों में काम के आधार पर होता था। जंगल उनके जीवन का अभिन्न अंग थे; उन्हें इनसे भौतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों तरह का सहारा मिलता था। फिर तमिलनाडु, केरल और श्रीलंका से बाहरी लोगों के बड़ी तादाद में आने से वे जंगलों में और गहरे धकेल दिए गए। जंगलों के सिकुड़ने से हालात और अधिक निराशाजनक हो गए और फिर सरकार ने जंगलों में जाने की इजाज़त पूरी तरह बन्द कर दी। इस इलाके के आदिवासियों में कुपोषण और निराशा तथा विषाद ने अपने पाँव जमा लिए। 1980 के दशक में *एक्शन फ़ॉर कम्युनिटी ऑर्गनाइज़ेशन, रिहैबिलिटेशन एण्ड डेवलपमेंट(अकॉर्ड)* ने यहाँ काम करना शुरू किया और 'आदिवासी मुनेत्र संगम' ने ज़मीन की माँग तथा जंगलों के इस्तेमाल के अधिकार को लेकर आदिवासियों को लामबन्द करना शुरू किया। इन्होंने पिछले कई सालों के दौरान आदिवासी संस्कृति को मज़बूती देने और समृद्ध करने के लिए काम किया है और साथ ही जंगलवासियों को शहरी लोगों और सरकार का सामना करने में मदद की।

'आदिवासी मुनेत्र संगम'(एएमएस) का मानना है कि आजीविका तथा गरिमा के लिए किए जा रहे आदिवासियों के संघर्ष में संस्कृति का केन्द्रीय महत्त्व है। इसलिए शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण सरोकार है। वयस्क होने की प्रक्रिया की बात हो या फिर अपनी दुनिया में पूर्ण तौर पर हिस्सेदार होने की

बात, इस सम्बन्ध में आदिवासियों के अपने तौर-तरीक़े रहे हैं। मगर उनके इन पुराने तौर-तरीक़ों का सामना अब एक बहुत ही अलग तरह की दुनिया से हो रहा है। तमिलनाडु की सरकार द्वारा स्थापित स्कूलों में उनके बच्चे ख़ुद को अलग-थलग और खोया हुआ महसूस करते रहे हैं। हैरत की बात नहीं है कि उनमें से कुछ ही थे जो स्नातक स्तर तक पहुँच कर अपनी शिक्षा पूरी कर पाते थे।

एएमएस के दो शिक्षाविदों (रामा शास्त्री तथा बी.रामदास) ने शुरुआत में अपने बच्चों के लिए, और फिर कार्यकर्ताओं के बच्चों के लिए, एक वैकल्पिक स्कूल स्थापित किया। इस स्कूल को 'आदिवासी मुनेत्र संगम' ने अपने हाथ में ले लिया ताकि स्कूली शिक्षा के एक ऐसे मॉडल को बढ़ावा दिया जा सके जो आदिवासियों को सम्मान और ताक़त प्रदान करे। अब यह शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा मौजूदा सरकारी और निजी स्कूलों में हस्तक्षेप के लिए 'आदिवासी मुनेत्र संगम' के प्रयासों का केन्द्र बन गया है।

प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद

प्रतीकात्मक **अन्तःक्रियावाद (symbolic interactionism)** के सिद्धान्त के मुताबिक़ सब इन्सान इस संसार में अन्तर्व्यवहारों/संवाद-प्रक्रियाओं के माध्यम से बढ़ते और विकसित होते हैं। हम अपने माता-पिता, दोस्तों आदि के साथ अन्तःक्रिया करते हुए अपना एक *स्वत्व ('सेल्फ़')* विकसित करते हैं। हम ख़ुद के भीतर झाँकना शुरू करते हैं और अपने इस स्वत्व से परिचित होते हैं। यह परिचय जन्म के समय सम्पूर्ण तौर पर अस्तित्व में नहीं होता, और न ही यह अपने आप विकसित होता है। बल्कि यह बदलता रहता है और सामाजिक अन्तर्व्यवहार के ज़रिए आकार पाता है। अपने माता-पिता, पड़ोसियों, दोस्तों, शिक्षकों आदि के सन्दर्भ में दुनिया में हमारा स्थान क्या है, यह हम उनके साथ अपनी अन्तःक्रियाओं के माध्यम से जान पाते हैं। यह एहसास धीरे-धीरे विकसित होता है। एक परिवार में बड़ा होने वाला शिशु धीरे-धीरे ख़ुद को एक 'लड़की' के रूप में देखना शुरू करता है। ख़ुद के बारे में यह एहसास यहाँ से पैदा होता है कि माता-पिता उस *स्वत्व* को किस तरह से देखते हैं और उसे क्या नाम देते हैं,कैसे इस *स्वत्व* का खेलना गुड़ियों के साथ होता है न कि बन्दूकों के साथ। हौले-हौले शिशु के स्वत्व में एक *लड़की* होने का एहसास पैदा होने लगता है। स्वत्व की इस तरह की व्याख्या आगे चल कर अन्य अन्तःक्रियाओं तथा किस तरह का व्यवहार करना है या नहीं करना है सम्बन्धी चयन को भी आकार देती है। हमारी पहचान और स्वत्व तयशुदा नहीं हैं; वे सामाजिक अन्तःक्रिया में से निकल कर आते हैं।

ख़ासतौर पर, यह स्वत्व, स्थितियों को हमारे द्वारा दिए गए अर्थों में से उभरता है। मिसाल के तौर पर, शिक्षक के साथ विद्यार्थी के रिश्ते को ही लीजिए। विद्यार्थी के तौर पर हम कभी भी पूरी तरह से नहीं समझ पाते कि शिक्षक हमें किस तरह से देखता है, और उसे हम केवल प्रतीकों या संकेतों के माध्यम से देखते हैं। एक आदिवासी बच्चा किन्हीं विशेष प्रतीकों या संकेतों से परिचित होता है और उनके माध्यम से वह समझ पाता है कि उसके बड़े उसकी ओर 'स्नेहपूर्वक' देख रहे हैं। स्नेह के प्रतीकों या संकेतों में कुछ विशेष शब्द, इशारे, स्पर्श आदि शामिल रहते हैं। जातीय समाज द्वारा नियंत्रित -न कि जनजातियों द्वारा नियंत्रित - किसी स्कूल में, सम्भावना है कि ऐसे विद्यार्थी को इन प्रतीकों या संकेतों का अभाव महसूस हो। इससे बच्ची यह निष्कर्ष निकालने लगती है कि उसे स्कूल में 'स्नेहिल सराहना' नहीं मिलती। मुमकिन है कि उसे ऐसे स्कूल में जाना अच्छा न लगे और जब वह वहाँ हो तब भी ख़ुद में ही सिमटी रहे। सी.एच.कूलि (C.H.Cooley)इस प्रक्रिया को स्वत्वनिर्माण का आत्म-दर्पण (lookingglass) वाला रास्ता कहते हैं : हम इस बात की कल्पना करते हैं कि अन्य लोग हमें कैसे देख रहे हैं। इसी समझ के आधार पर हम अपनी प्रतिक्रियाएँ निर्मित करते हैं। और यह समझ प्रतीकों पर निर्भर करती है और उन प्रतीकों पर चिन्तन के माध्यम से हम अपनी भावनाएँ विकसित करते हैं और चुनाव करते हैं कि भविष्य में हमें कैसा व्यवहार करना है। अपनी पहचान और स्वत्व को निर्मित करने के लिए संकेतों या प्रतीकों के साथ हमारी अन्तःक्रिया पर ज़ोर देने वाले इस नज़रिए को *प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया* कहा जाता है।

प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया के सिद्धान्तकारों के मुताबिक़ एक अच्छा शिक्षक बनना सीखना है तो इसका एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि प्रतीकों या संकेतों को उस तरीक़े से इस्तेमाल करना सीखा जाए जिससे विद्यार्थी परिचित हों और जिसे वे समझ सकें। उदाहरण के लिए, अगर मैं विद्यार्थियों को बताना चाहता हूँ कि उस दिन की कक्षा और विषय, बाक़ी सब कुछ समझने की कुंजी है, तो मुझे सही प्रतीक तलाशने होंगे – इशारे, बोलने का लहजा, शब्द, ब्लैकबोर्ड का काम आदि – और इन्हें इस तरह इस्तेमाल करना होगा कि वे समझ पाएँ। इसके लिए एक शिक्षक के तौर पर मुझे भी उनके संकेतों या प्रतीकों को जानना होगा। हो सकता है कि मैं अपनी बात इस तरह से कहूँ कि विद्यार्थियों तक उसकी प्रतिध्वनि न पहुँचे और फिर वे मेरी ओर ध्यान ही न दें। मैं विद्यार्थियों पर निष्क्रिय और मन्दबुद्धि होने का दोष भले ही लगा दूँ मगर असल में तो यह मेरे द्वारा इस्तेमाल किए गए संकेतों या प्रतीकों की असफलता थी।

अच्छा पढ़ाना सीखने का एक बड़ा हिस्सा है यह पहचानना शुरू करना कि कौन-से प्रतीकों या संकेतों को विद्यार्थी समझते हैं और फिर उनमें से सबसे प्रभावशाली प्रतीकों

का चुनाव कर,उनका इस्तेमाल करना। जब विद्यार्थी मेरी कक्षा में दिलचस्पी लेते हुए प्रतिक्रिया देने लगते हैं (या मैं ऐसे प्रतीक या संकेत देखने लगता हूँ जो मेरे ख़याल में दिलचस्पी का प्रतिनिधित्व करते हैं) तो वह मेरे स्वत्व को आकार देने लगता है। मैं स्वयं को एक क़ाबिल और गर्वित शिक्षक के रूप में देखने लगता हूँ। हम हमेशा संकेतों या प्रतीकों के माध्यम से अन्तःक्रिया करते रहते हैं और इस प्रक्रिया का अध्ययन सीखने-सिखाने के लिए महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान करता है।

प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया में स्वायत्तता

स्वत्व का निर्माण सामाजिक अन्तःक्रियाओं के माध्यम से होता है मगर ऐसा यांत्रिक तरीक़े से नहीं होता। अन्य लोग हमें जिस तरह देखते हैं, हम उसे हमेशा स्वीकार नहीं करते। जब किसी प्रभावशाली जाति का एक शिक्षक एक आदिवासी बच्चे को तिरस्कार से देखता है, ऐसे भाव से देखता है मानो वह एक बिल्कुल फ़िज़ूल विद्यार्थी हो जिसे स्कूल आना ही नहीं चाहिए था, तब मुमकिन है कि बच्चा उस भाव के अर्थ को समझ ले। फिर बच्चा अपने मन में उन अर्थों को सुलझाने की कोशिश करता है और इस पर भी विचार करता है कि उसे कैसा महसूस होना चाहिए। वह ख़ुद के बारे में वैसा ही सोचना शुरू कर सकता है: मैं फ़िज़ूल हूँ, मैं ग़लत जगह पर आ गया हूँ आदि, आदि। या वह एक और व्याख्या निर्मित कर सकता है : मुझे यहाँ पर मौजूद अन्य बच्चों की तरह होना होगा, मुझे शिक्षक की स्वीकृति, उस का अनुमोदन हासिल करना चाहिए। या एक और ही व्याख्या : मेरे साथ यहाँ ग़लत हो रहा है; शिक्षक मुझे मेरे स्थान से वंचित कर रहा है।

प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया के विचारकों का कहना है कि दूसरे हमें किस नज़र से देखते हैं, यह होने के बाद हमारे भीतर कई संवाद चलते हैं। यह आन्तरिक वार्तालाप ही वह स्थल होते हैं जहाँ हम अलग-अलग प्रतिक्रियाओं को चिह्नित करते और उन्हें रचते हैं तथा उन्हीं के बीच से किसी का चुनाव करते हैं। प्रतीकात्मक अन्तःक्रिया का विचार हमें आन्तरिक संवादों की तरफ़ ध्यान देने की ओर निर्देशित करता है और इस ओर भी, कि वे किस तरह से खुलते और सामने आते हैं। शुरुआत में यह केवल हमारे आन्तरिक जीवन को देखने की ओर प्रवृत्त था मगर आज इस परिप्रेक्ष्य को यह दर्शाने के लिए अनुकूलित कर लिया गया है कि हमारे आन्तरिक जीवन का जुड़ाव सामाजिक जीवन के व्यापक मुद्दों और संघर्षों के साथ है। हमारे आन्तरिक वार्तालाप ही हैं जो हमें बेवकूफ़ औरत या आदिवासी की घिसी-पिटी छवि को चुनौती देने की ओर ले जाते हैं।

विश्वास से भरे स्वत्व का निर्माण करना

विद्योदय स्कूल

स्कूली शिक्षा पर काम करने का'आदिवासी मुनेत्र संगम' का अनुभव दिखाता है कि किस तरह वृहद् समाज के संघर्षों की गूँज कक्षा में और हमारे आन्तरिक संवादों में सुनाई देती है। 'आदिवासी मुनेत्र संगम' की दलील थी कि आदिवासी शालीन और अच्छे लोग हैं। उनके साथ शक्तिशाली समूहों ने अन्यायपूर्ण बर्ताव किया था जिसके चलते उनका शोषण हुआ और वे कंगाल हुए। कई स्थानों पर आदिवासी समूह बनाए गए ताकि वे एक साथ मिलकर अपनी समस्याओं के बारे में चर्चा करें और इन्साफ़ हासिल करने की कोशिश कर सकें। उन्होंने पूरी कोशिश की कि आदिवासियों में आत्म-सम्मान फिर से जागृत हो और वे सक्रिय होकर अपनी स्थितियों को बेहतर बनाने की दिशा में बढ़ें।

इसी प्रक्रिया के चलते *विद्योदय* स्कूल बना ('आदिवासी मुनेत्र संगम' के स्कूल का यही नाम था) और स्थानीय स्कूलों तथा शिक्षा के प्रशासन में हस्तक्षेप किए गए। इससे नीलगिरि के आदिवासी विद्यार्थियों के आन्तरिक संवादों में एक शक्तिशाली वृत्तान्त या आख्यान ने जन्म लिया। इससे,शक्तिशाली समुदायों के शिक्षक उन्हें जिस तरह से देखते थे, उसका सामना करने का रास्ता मिला।

पहचान का पुनर्निर्माण

आदिवासियों की पहचान के पुनर्निर्माण के लिए विद्योदय स्कूल को सजग रूप से आदिवासी शिक्षकों के इर्द-गिर्द निर्मित किया गया,हालाँकि शिक्षकों में ग़ैर-आदिवासी भी शामिल थे। शुरुआत में तो किसी भी आदिवासी के स्नातक न होने के कारण आदिवासी शिक्षक उपलब्ध नहीं थे, इसलिए स्कूल ने शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की अपनी स्वयं की प्रक्रिया अपनाई। उन्होंने स्कूल की पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन किया और उन्हें अच्छी तरह समझते हुए उन पर अधिकार हासिल किया तथा शिक्षणशास्त्र के बारे में भी सीखा। आदिवासी नेता और वरिष्ठजन उनसे अपने संघर्ष के बारे में तथा उसमें शिक्षा के स्थान के बारे में बात करते थे। उन्होंने इस ख़तरे को रेखांकित किया कि स्कूलों की वजह से आदिवासी समुदाय अपने बच्चों को किसी अन्य संस्कृति के हाथों खो सकता है - मुमकिन है कि पारम्परिक स्कूलों में अच्छा प्रदर्शन करने वाले आदिवासी विद्यार्थी स्वयं को और अपने रिश्तेदारों तथा दोस्तों को भी तुच्छ समझना शुरू कर दें। यह बात बार-बार दोहराई गई कि ऐसी शिक्षा वे अपने बच्चों के लिए नहीं चाहते हैं।

विद्योदय स्कूल ने अपने परिसर में आदिवासी भाषाओं के प्रयोग की खुली इजाज़त दी। इलाक़े के अन्य निजी और सरकारी स्कूलों में आदिवासी बच्चों की भाषा को दबाया जाता था और बच्चों से तमिल में बोलने को कहा जाता था। विद्योदय स्कूल की एक शिक्षक ने मुझे बताया कि जब वह शिक्षक के तौर पर वहाँ आईं तो पहली बार किसी स्कूल में उनकी अपनी भाषा की ध्वनि उनके कानों तक पहुँची। अपनी भाषा का किसी स्कूल में सुनाई पड़ना उनके लिए एक अजीब

और नया अनुभव था। स्कूल की चारदीवारी में अपनी भाषा उन्हें अटपटी-सी लगी,लेकिन इसके बावजूद यह बहुत उचित और सही भी लग रही थी। इस स्कूल में प्रवेश करने पर अब बच्चे को यह संकेत नहीं मिलता था कि अपने घर की भाषा को ले कर उसे शर्मिंदगी महसूस होनी चाहिए। शिक्षण की औपचारिक भाषा तो तमिल ही रही और वह पढ़ाई भी जाती थी मगर बच्चों को उससे धीरे-धीरे ही परिचित करवाया जाता था। मिसाल के तौर पर, शिक्षक विद्यार्थियों से बात करते हुए बताते थे कि किस तरह अलग-अलग आदिवासी भाषाओं में 'लाल' के लिए अलग-अलग शब्द हैं और इसके लिए तमिल शब्द क्या है।

अपने स्वत्व के साथ जुड़ना

प्रतीकात्मक अन्त:क्रिया के विचारक कहेंगे कि इस स्कूल में बच्चे अपने स्वत्व की एक ऐसी समझ बना रहे थे जिसके पीछे कोई ऐसा गहरा राज़ नहीं था जिसे छुपाए जाने और चुप्पी में दबाए जाने की ज़रूरत हो। इसकी बजाय वे अपने स्वत्व के विभिन्न हिस्सों के बीच संवाद निर्मित कर रहे थे। यहाँ अलग-अलग भाषाओं के बीच के सत्ता समीकरणों को नज़रअन्दाज़ नहीं किया गया था। बच्चे और शिक्षक इन अन्तरों के बारे में और तमिल की ताक़त के बारे में भी जानते थे। अँग्रेज़ी भी पढ़ाई जाती थी – और बख़ूबी पढ़ाई जाती थी। यह बच्चे अँग्रेज़ी बोलने की अपनी क्षमता के मामले में स्पष्ट रूप से श्रेष्ठ दिखाई देते थे। उनकी ख़ुद की पहचान, तमिल होने और अँग्रेज़ी वक्ता होने –इन तीनों के बीच सम्बन्ध बनाया जा रहा था। यह नई तरह की पहचान उस शर्मिंदगी महसूस करने वालेतमिल वक्ता की पहचान से अलग थी जो दोस्तों और परिवार के साथ गुप-चुप एक अन्य भाषा में बात करता था। अब बच्चे अपने स्वत्व की एक आत्म-विश्वासी, सक्रिय समझ बनाने की ओर बढ़ रहे थे।

'आदिवासी मुनेत्र संगम' का शिक्षा से सम्बद्ध कार्य एक विशेष स्थिति के साथ जूझता है। इस स्थिति में पारम्परिक स्कूली शिक्षा का नतीजा एक ऐसी पहचान बनने के रूप में सामने आया, जो निम्न और नाकारा होने का एहसास पैदा करती थी। प्रतीकात्मक अन्त:क्रिया का सिद्धान्त हमें एक रास्ता प्रदान करता है जिससे हम समझ पाते हैं कि विद्योदय स्कूल और 'आदिवासी मुनेत्र संगम' की गतिविधियाँ स्वत्व के बारे में बच्चों के ख़्यालों को बदलने में किस तरह योगदान देती हैं। इस सबके चलते एक अलग ही तरह के आन्तरिक संवाद सम्भव हो पाए, जिनसे धीरे-धीरे विद्यार्थियों के कार्यों का सशक्तीकरण हो रहा है,और उन्हें अपनी पहचान की एक नई समझ और संसार में एक नया गरिमापूर्ण स्थान बनाने में भी मदद मिल रही है।

आभार

रामा शास्त्री, बी.रामदास तथा विद्योदय स्कूल के सभी शिक्षकों एवं 'आदिवासी मुनेत्र संगम' के सदस्यों का आभार जिन्होंने यह लेख लिखने में सहयोग दिया।

References and further reading

Blackledge, David A., and Barry Dennis Hunt. "Micro-Interpretive Approaches: An Introduction." In Sociological Interpretations of Education, 233–48. Taylor & Francis, 1985.

Madan, Amman, Rama Sastry, and B. Ramdas. "Social Movements and Educational Change: A Case Study of the Adivasi Munnetra Sangam." Economic & Political Weekly 54, no. 5 (February 2, 2019): 45–52.

Reay, Diane. "Finding or Losing Yourself? Working-Class Relationships to Education." In The Routledge Falmer Reader in Sociology of Education, edited by Stephen Ball. London and New York: Routledge Falmer, 2004.

अमन मदान पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में एंथ्रोपॉलजी (मानव-विज्ञान) तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में समाजशास्त्र के अध्येता रहे हैं। वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं। इन दिनों वे शिक्षा एवं सामाजिक असमानता विषय की पुस्तक पर काम कर रहे हैं। हाल ही में उनकी पुस्तक 'एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी' का प्रकाशन एकलव्य द्वारा किया गया है। उनसे amman.madan@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : रमणीक मोहन